संपादकीय जागरण

मंगलवार, 10 जुलाई, 2018 : आषाढ़ कृष्ण 12 वि. 2075

अवसर किसी पूर्व सूचना के साथ नहीं आते

जीएसटी की जटिलताएं

यह समय की मांग और जरूरत है कि कारोबारियों को जीएसटी की जटिलताओं से बचाया जाए, लेकिन इस टैक्स व्यवस्था को सरल-सुगम बनाने के नाम पर ऐसा कुछ नहीं होना चाहिए जिससे टैक्स चोरी का सिलसिला कायम रहे या फिर और गति पकड़े। यह सूचना कारोबार जगत को राहत देने वाली हो सकती है कि जीएसटी परिषद रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म खत्म करना चाह रही है, लेकिन यह ठीक नहीं कि पहले जिस व्यवस्था को टैक्स चोरी रोकने में सहायक माना जा रहा था उसे अब लागू न करने पर विचार किया जा रहा है। रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म वह प्रस्तावित व्यवस्था है जिसमें जीएसटी के तहत पंजीकृत उन व्यापारियों को खुद टैक्स देना होगा जो गैर पंजीकृत व्यापारियों से एक दिन में पांच हजार या उससे अधिक का सामान या सेवाएं हासिल करते हैं। पहले इस व्यवस्था को लागू करने से इसलिए बचा जाता रहा ताकि व्यापारियों को अनावश्यक परेशानी का सामना न करना पड़े, लेकिन ऐसा लगता है कि अब उससे पूरी तौर पर पल्ला झाड़ने की तैयारी है। कहना कठिन है कि इस मसले पर अंतिम निर्णय क्या होगा, लेकिन इस पर गौर करना होगा कि जीएसटी परिषद के फैसले से कहीं टैक्स चोरी करने वाले फायदे में न रहें। रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म के साथ-साथ कुछ उन प्रावधानों को भी ठंडे बस्ते में डालने पर विचार किया जा रहा है जो कथित तौर पर कारोबारियों के लिए असुविधाजनक हैं। इससे इन्कार नहीं कि जीएसटी के कई प्रावधान खासे जटिल हैं, लेकिन कुछ सरल प्रावधान भी उन कारोबारियों को जटिल नजर आते हैं जो कंप्यूटर-इंटरनेट आधारित तकनीक से अपरिचित हैं अथवा उसका इस्तेमाल करने को लेकर तत्पर नहीं।

एक समस्या यह भी है कि जीएसटी आधारित तकनीक उतनी सुगम नहीं जितनी होनी चाहिए। इस सिलसिले में वित्त सचिव का यह कहना है कि हमें तकनीक ने नीचा दिखाया, लेकिन तकनीक के कुछ जानकार जीएसटी के जटिल नियम-कानूनों को दोष दे रहे हैं? बेहतर हो कि इस पहेली का हल जल्द निकले कि जीएसटी संबंधी तकनीक जटिल है या फिर उसके नियम-कानूनों के अनुपालन की प्रक्रिया? निःसंदेह यह समझ आता है कि चुनावी साल में सरकार जीएसटी के ऐसे प्रावधान बनाने से बचे जो कारोबारियों के लिए सिरदर्द बन जाएं, लेकिन यह समझना कठिन है कि वास्तव में सरल नियम-कानून क्यों नहीं बनाए जा सकते? यह किसी से छिपा नहीं कि जीएसटी के कई सरल बताए जाने वाले प्रावधान भी कठिन हैं। आखिर एक साल बाद भी जीएसटी का रिटर्न दाखिल करना सहज-सुगम क्यों नहीं है? इसे आसान बनाने के लिए लाए जा रहे नए सिंगल रिटर्न फार्म पर तभी संतोष जताया जा सकता है जब वह वास्तव में सरल हो। आखिर इसका क्या मतलब कि कंपोजीशन स्कीम के तहत आने वाले कारोबारियों के लिए पहले हर महीने रिटर्न दाखिल करना ठीक समझ गया, फिर तीन महीने में सिर्फ एक बार और अब यह कहा जा रहा है कि साल में सिर्फ एक रिटर्न भी संभव है। चूंकि जीएसटी को वास्तव में सरल बनाना और टैक्स चोरी के छिद्रों को बंद करना अभी भी शेष है इसलिए इस काम को प्राथमिकता के आधार पर पूरा किया जाना चाहिए।

सुरक्षा पर सवाल

बागपत जेल में कुख्यात अपराधी मुन्ना बजरंगी की हत्या ने सनसनी तो फैलाई ही है, जेलों का वह सच भी उजागर कर दिया है, जो परदे के पीछे था। जेलों की सुरक्षा व्यवस्था को लेकर सवाल पहले भी उठते रहे हैं और सरकार की ओर से कदम उठाए भी जाते रहे हैं लेकिन, योजनाओं की गति कितनी तेज होती है, इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 71 जेलों में 47 में अभी तक सीसीटीवी कैमरे नहीं लगे हैं। जेलों में जैमर लगाने के भी आदेश जारी हुए थे लेकिन, इस पर भी अमल नहीं किया जा सका। सच तो यह है कि जेलों की चहारदीवारी के भीतर अपराधियों का ही साम्राज्य चलता रहा है। सुनील राठी जैसे दुर्दांत अपराधी तक पिस्टल पहुंचना इस बात का प्रमाण है कि बागपत जेल की सुरक्षा में कई सेंध थीं और राठी को वहां के कर्मचारियों की मदद भी हासिल थी। इससे पहले जेल में बंद कई अपराधियों के पास मोबाइल फोन मिल चुके हैं। अपराधियों के पास नशे के सामान तो जेलकर्मी ही पहुंचाते रहे हैं।

अब यह भी ढकी छिपी बात नहीं है कि प्रदेश के कई जेलों से अपराधी अपना कारोबार चला रहे हैं। ठेके, पट्टों में भी उनका दखल चल रहा है।

वैसे जेलों की सुरक्षा व्यवस्था में कमी का एक बड़ा कारण स्टाफ की कमी भी है। इसमें कोई दो राय नहीं कि बागपत जेल में मुन्ना बजरंगी की हत्या की साजिश का तानाबाना बहुत सूझ से बुना गया जिसे जेल के कर्मचारियों और अधिकारियों के बिना अंजाम देना संभव नहीं था। अब यह भी ढकी छिपी बात नहीं है कि प्रदेश के कई जेलों से अपराधी अपना कारोबार चला रहे हैं। ठेके, पट्टों में भी उनका दखल चल रहा है। उनकी राजनीतिक पहुंच के चलते अधिकारी भी बहुत सी बातें जानते हुए भी नजरअंदाज करते हैं। जेलें अपराधियों का सुरक्षा घेरा बनकर रह गई हैं।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या डोप टेस्ट से पंजाब में ड्रग समस्या का समाधान होगा?

आज का सवाल
क्या जीएसटी में रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म खत्म करने से उद्योग जगत को बड़ी राहत मिलेगी?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर **POLL** लिखें, स्पेस देकर **Y, N** या **C** लिखकर 57272 पर भेजें
Y -हां, **N**-नहीं, **C**-कह नहीं सकते

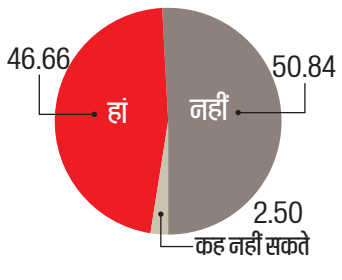

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।
सभी आंकड़े प्रतिशत में।

द्विराष्ट्रवादी दुर्घटना के अवशेष

कैप्टन आर विक्रम सिंह

कश्मीर जैसी समस्या का समाधान तब तक संभव नहीं जब तक हम उन शक्तियों को पराजित नहीं कर देते जो आज भी यह मानती हैं कि हिंदू-मुसलमान दो अलग कौमें हैं

जम्मू-कश्मीर में भाजपा के पीडीपी से अलग होने और इस कारण वहां करीब तीन साल से चल रही साझा सरकार के गिर जाने पर कोई कुछ भी कहे, यह नहीं कहा जा सकता कि कश्मीर में लोकतंत्र को अवसर नहीं दिया गया। जम्मू-कश्मीर में वैचारिक रूप से विपरीत ध्रुवों पर स्थित दो राजनीतिक दलों की ओर से जनादेश को शिरोधार्य कर असंभव सी सरकार चलाई गई। इस दौरान जहां पीडीपी अपने दायरे से बाहर नहीं निकल सकी वहीं पाक प्रायोजित द्विराष्ट्रवादी शक्तियां हावी होती गईं। कश्मीर जैसी समस्या का समाधान तब तक संभव नहीं दिखता जब तक हम उन द्विराष्ट्रवादी शक्तियों को सदा के लिए पराजित नहीं कर देते जो आज भी यह मानती हैं कि हिंदू-मुसलमान दो अलग कौमें हैं। जिन्ना का द्विराष्ट्रवाद पाकिस्तान के अस्तित्व का आधार होने के साथ ही कश्मीर समस्या की जड़ भी है। इस जड़ को काटने की जरूरत है। कश्मीरी पंडितों से ज्यादा सौम्य एवं शांतिपूर्ण समाज की कल्पना मुश्किल है। उनका देश निकाला इसी द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को बल देने के लिए हुआ। माना जाता है कि जिन्ना की सोच को 1946 के चुनाव नतीजों से ताकत मिली। पंजाब और सीमा प्रांत के मुस्लिमों ने तब पाकिस्तान के विचार का उतना समर्थन नहीं किया जितना उत्तर प्रदेश और बिहार के मुसलमानों ने किया। मुस्लिम लीग को उप्र और बिहार में 83 प्रतिशत मुस्लिम सीटें मिलीं, जबकि पंजाब एवं सीमा प्रांत में 65 प्रतिशत सीटें। मुस्लिम लीग के समर्थकों का एक भाग पाकिस्तान चला भी गया। अब हम उन्हें वहां मुहाजिरों के रूप में विलाप करते देखते हैं। पाकिस्तान जिन्ना का मजहबी नहीं, बल्कि सियासी लक्ष्य था। वह खुद पाकिस्तान बनने के बाद पांच वक्त के नमाजी नहीं हुए, लेकिन जब मुल्क मजहब के नाम पर बन गया तो कट्टरता की राह पर बढ़ना उसकी मजबूरी बन गया।

बांग्लादेश के अलगाव के बाद पाकिस्तान में कट्टरता और तेजी से बढ़ी। कश्मीर 1947 में द्विराष्ट्रवाद की सोच से प्रभावित नहीं था, लेकिन मजहबी कट्टरता ने वहां विपरीत स्थितियां बना दीं। चूंकि भारत में खुलेआम द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत की पैरोकारी नहीं की जा सकती इसलिए सेकुलरिज्म यानी धर्मनिरपेक्षता के मंच का इस्तेमाल किया जाता है। हमने देखा है कि सेकुलरिज्म के तर्क का इस्तेमाल धार्मिक समरसता, सहयोग, सामंजस्य के लिए नहीं, बल्कि हिंदुत्व का हौवा खड़ा करने के लिए अधिक किया गया। तमाम तथाकथित सेक्युलर मंचों से न तो पाकिस्तान के आतंकी एजेंडे की आलोचना होती है और न ही कश्मीरी पंडितों की वापसी कोई मुद्दा बनती है। एक बार जब आपने द्विराष्ट्रवाद के समक्ष समर्पण कर पाकिस्तान स्वीकार कर लिया तब फिर धर्मनिरपेक्षता, हिंदू-मुस्लिम एकता जैसी बातें खोखली लगनी ही थीं। देश को द्विराष्ट्रवाद के भूत से अभी मुक्ति नहीं मिली है। जब पाकिस्तान के साथ आप सहअस्तित्व की बात करते हैं तो वैचारिक संकट का राक्षस आपके सम्मुख उपस्थित होता है। हमें यह पता ही नहीं चलता कि पाकिस्तान का औचित्य सिद्ध करने वाले दरअसल अपने देश में द्विराष्ट्रवादी एजेंडे को आगे बढ़ा रहे होते हैं। तुष्टीकरण की नीति मूलतः द्विराष्ट्रवादी एजेंडे का प्रतिफल है। बांग्लादेश के उदय के बाद हमने द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को अर्थहीन सिद्ध करने के लिए कुछ भी नहीं किया। मात्र रक्षात्मक लड़ाई लड़ते रहे। कश्मीर की जंग, कश्मीर की जमीन पर नहीं बल्कि द्विराष्ट्रवाद की सोच के खिलाफ लड़ी जाएगी। 1857 की आजादी की लड़ाई मुगल बादशाह के नाम पर हिंदू-मुसलमानों द्वारा एक साथ लड़ी गई थी। इसके बाद अंग्रेज शासकों से लड़ने आगे आए क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, अशफाकउल्ला आदि की भी कोई सांप्रदायिक सोच नहीं थी। गांधी जी ने जब असहयोग आंदोलन में तुर्की के खलीफा की बहाली के धार्मिक और गैरमुल्की मुद्दे को आंदोलन का एक बिंदु बनाया तो उनकी मंशा आजादी के आंदोलन में मुसलमानों की भागीदारी बढ़ाने की थी। आजादी का संघर्ष तो हमारी साझा मुहिम थी। न कोई अलग हिंदू समस्या थी, न अलग मुस्लिम मसायल थे, लेकिन 1946 में चुनाव से पहले अपनी रैलियों में जिन्ना ने लोकतंत्र का इस्तेमाल धार्मिक ध्रुवीकरण के लिए किया। 1930 के बाद जिन्ना का सांप्रदायिक एजेंडा सामने आया। इसके पहले भारत में सांप्रदायिकता की राजनीति नहीं हुई थी। जिन जिन्ना ने यह कहकर कि हिंदू-मुसलमान अलग कौमें हैं, पाकिस्तान बनवाया वही जिन्ना 11 अगस्त 1947 को पाकिस्तान एसेंबली में यह कहते पाए गए कि आप अपनी संस्कृति, अपने धर्म के मुताबिक पाकिस्तान में रहने और अपने मंदिरों-मस्जिदों में जाने के लिए आजाद हैं। जाहिर है जिन्ना ने सिर्फ सत्ता के लिए मजहब का इस्तेमाल कर अलग देश बनवाया था। धार्मिक एवं जातीय ध्रुवीकरण अक्षम और अयोग्य लोगों के लिए सत्ता के रास्ते खोल देता है। जिन्ना कोई सफल नेता नहीं सिद्ध हुए, लेकिन जब उन्होंने सांप्रदायिक डगर पकड़ी तो एक अलग देश बनवाने में सफल हो गए। यह हैरानी है कि कुछ लोगों को लगता है कि जिन्ना की फोटो एएमयू में लगी रहे तो हर्ज नहीं।

भारत के मुसलमानों को इस सवाल से रूबरू होना पड़ेगा कि कश्मीर की धर्म आधारित आजादी की मांग कहां तक जायज है? जम्मू और लद्दाख में आजादी की कोई मांग नहीं है। सिर्फ कश्मीर घाटी की आजादी की मांग अगर द्विराष्ट्रवादी एजेंडा नहीं तो और क्या है? आखिर इस द्विराष्ट्रवाद से लड़ेगा कौन? मुस्लिम समाज से आने वाले नेताओं का अपने देश में अकाल सा है। भारत में राष्ट्रवादी मुस्लिम नेतृत्व को न उभरने देना द्विराष्ट्रवादी एजेंडे की सफलता है। रफी अहमद किदवई जैसे नेताओं के सीमित उदाहरण ही हैं अपने यहां। हमारी राजनीति किसी मुस्लिम पृष्ठभूमि के कार्यकर्ता को तत्काल हिंदू-मुस्लिम चश्मे से देखने लगती है। मुस्लिमों को वोट बैंक समझने वाली राजनीति भी द्विराष्ट्रवाद की पोषक है। द्विराष्ट्रवाद के एजेंडे से राष्ट्रवादी मुस्लिम समाज ही लड़ सकता है। इंडोनेशिया के समान अपनी मूल संस्कृति पर गर्व करने वाले वर्ग को साए से निकलकर सामने आना है। वे ही तो द्विराष्ट्रवादी सोच के विरुद्ध देश के हरावल दस्ते बनेंगे, लेकिन उन्हें संगठित करने वाला कोई नहीं है। पता नहीं राजनीति के लिए उनकी उपयोगिता क्या है, लेकिन देश का काम उनके बगैर नहीं चल सकता। वे कहां हैं? उन्हें स्वयं ही संगठित होकर राष्ट्रीय परिदृश्य पर अपनी आमद दर्ज करानी होगी। यह कब होगा, यह वक्त ही बताएगा।

कश्मीर 1947 में द्विराष्ट्रवादी नहीं था। आज का कश्मीर सुविधाजीवी राजनीति की असफलता का परिणाम है। पाकिस्तान का धर्मसंकट यह है कि यदि वह कश्मीर को भारत का भाग मानता है तो वह अपने अस्तित्व के उस आधार को कमजोर करेगा, जिस पर वह खड़ा है। अगर भारत धार्मिक विभाजन स्वीकार करता है तो वह खुद अपने यहां सांप्रदायिक विभाजन के रास्ते खोल देगा। अनेकता में एकता हमारे अस्तित्व का आधारभूत सिद्धांत है। आधारभूत सिद्धांतों पर समझौते नहीं होते। द्विराष्ट्रवाद के रूप में एक नकली सिद्धांत पर पाकिस्तान का वजूद में आना एक ऐतिहासिक दुर्घटना है और अभी उसका अंत नहीं हुआ है। वह बहुलवाद की आड़ में अपने रास्ते तलाश रहा है।

(लेखक भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व सदस्य हैं)

response@jagran.com

दलित आरक्षण पर अनुत्तरित प्रश्न

बलबीर पुंज

आखिर केंद्रीय अनुदान से संचालित शिक्षा संस्थानों में दलितों को संवैधानिक अधिकारों से वंचित कैसे किया जा सकता है?

बीते दिनों अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय यानी एएमयू और जामिया मिलिया इस्लामिया में दलित आरक्षण की चर्चा क्या हुई, कुछ लोगों की भृकुटियां तन गईं। इसमें वे अग्रिम पंक्ति में हैं जिन्होंने बीते चार वर्षों से दलित उत्पीड़न की घटनाओं को लेकर भाजपा-मोदी सरकार को दलित-विरोधी बताया और तथ्यों को विरुपित करके देश की छवि को कलंकित किया और हिंदू समाज के विरोध में दलित-मुस्लिम गठजोड़ की बात की। पिछले दिनों राष्ट्रीय अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग के अध्यक्ष रामशंकर कठेरिया ने पूछा, 'एएमयू में दलितों-पिछड़ों को आरक्षण क्यों नहीं दिया जा रहा? इस राष्ट्रीय आयोग की उत्तर प्रदेश इकाई ने इसी संबंध में विश्वविद्यालय को नोटिस भेजकर आठ अगस्त तक जवाब मांगा। प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ पहले ही सवाल उठा चुके थे कि यदि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में दलितों को आरक्षण दिया जा सकता है तो एएमयू और जामिया में ऐसा क्यों नहीं हो सकता?

कई वर्षों से एएमयू का दावा है कि वह अल्पसंख्यक संस्थान है और संविधान की धारा-30(1) के अंतर्गत उसे अल्पसंख्यकों की इच्छानुसार- शिक्षण संस्थान स्थापित करने और उन्हें संचालित करने का अधिकार प्राप्त है। साथ ही अनुच्छेद 15(5) के तहत वह सरकारी हस्तक्षेप और संवैधानिक आरक्षण संबंधी बाध्यता से मुक्त है। यूं तो यहां मुस्लिम आरक्षण की कोई घोषित नीति नहीं है, किंतु स्वयं को अल्पसंख्यक संस्थान मानते हुए जो मापदंड उसने स्थापित किए हैं उससे यहां लगभग 70 प्रतिशत सीटें मुस्लिम छात्रों के लिए आरक्षित हैं। जामिया भी 50 प्रतिशत मुस्लिम छात्र-छात्राओं को आरक्षण दे रहा है। देश में जितने भी केंद्रीय विश्वविद्यालय हैं उनका संचालन संसदीय अधिनियमों, सरकारी अनुदानों और राष्ट्रीय आरक्षण नीति आदि संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप हो रहा है। दूसरी ओर एएमयू और जामिया जैसे केंद्रीय विश्वविद्यालय संविधान का उल्लंघन कर रहे हैं। आखिर इन दोनों विश्वविद्यालयों की वस्तुस्थिति क्या है?

अंग्रेजों के विश्वासपात्र सैयद अहमद खान ने अलीगढ़ में वर्ष 1877 में एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की थी जो 1920 में तत्कालीन संसदीय प्रावधानों के अंतर्गत अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित हुआ। संविधान सभा (1946-50) में जब केंद्रीय विश्वविद्यालयों के नामों पर चर्चा हुई तब एएमयू और बीएचयू पर गंभीर विमर्श हुआ। डॉ. भीमराव आंबेडकर, नजीउद्दीन अहमद, शिब्बनलाल सक्सेना, सरदार हुकुम सिंह सहित संविधान सभा के अनेक सदस्यों ने पूर्ण सहमति के साथ इन दोनों शिक्षण संस्थाओं को सातवीं अनुसूची

की संघीय सूची क्रमांक-1 की प्रविष्टि-63 में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया और इन्हे 'राष्ट्रीय महत्व का संस्थान' माना। इस सूची में उद्धृत है, 'संविधान के प्रारंभ के समय काशी हिंदू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तथा कोई भी अन्य संस्थान, जो संसद द्वारा पारित हो, उसे राष्ट्रीय महत्व का संस्थान घोषित किया जाएगा।' इसमें कोई भी अल्पसंख्यक संस्थान शामिल नहीं हो सकता।

वर्ष 1951-79 के बीच तत्कालीन सरकारों ने एएमयू को केंद्रीय विश्वविद्यालय माना। वर्ष 1968 के अजीज बाशा बनाम भारतीय संघ मामले में संवैधानिक पीठ ने सर्वसम्मत निर्णय दिया कि एएमयू अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान नहीं है और स्पष्ट किया कि संसद द्वारा स्थापित किसी भी संस्था को अल्पसंख्यक संस्थान का दर्जा नहीं दिया जा सकता। वर्ष 1980 के मध्यावधि चुनाव में सत्ता के लिए लालायित कांग्रेस ने मुस्लिम वोटबैंक सुनिश्चित करने हेतु एएमयू को अल्पसंख्यक दर्जा देने की असंभव सी और गैर-संवैधानिक घोषणा कर दी। सत्तासीन होते ही उसने 1981 में एएमयू अधिनियम की धारा-2 में संशोधन करके परिभाषित कर दिया- 'इस विश्वविद्यालय की स्थापना मुस्लिमों द्वारा हुई थी', जबकि यह संसदीय अधिनियमों के तहत स्थापित हुआ था। इन्हीं संशोधनों में एक नई धारा-5(सी) जोड़ी गई, जिसके अनुसार- 'भारत के मुसलमानों के लिए सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक विकास हेतु विशेष प्रयास किए जाएं।' इन्हीं प्रावधानों के आधार पर अगस्त 1989 में एएमयू प्रबंधन ने तत्कालीन राष्ट्रपति आर वेंकटरमन को 50 प्रतिशत मुस्लिम आरक्षण हेतु एक प्रस्ताव भेज दिया जिसे उन्होंने 1990 में निरस्त कर दिया। ढाई दशक बाद विश्वविद्यालय ने वही प्रस्ताव तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री के पास भेजा। इस पर उसे 25 फरवरी 2005 को अनापत्ति पत्र मिल गया। इसके बाद जब मुस्लिम आरक्षण संबंधी याचिका पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय में सुनवाई हुई तब अदालत ने 1981 के संशोधनों को अवैधानिक ठहराकर उस अनापत्ति पत्र को भी खारिज कर दिया। मामला अब सर्वोच्च न्यायालय में है। वर्ष 2016 में मोदी सरकार ने हलफनामा दाखिल कर संवैधानिक प्रतिबद्धता को दोहराया है और इसे राष्ट्रीय महत्व का संस्थान और केंद्रीय विश्वविद्यालय माना है। इस प्रकार कहीं भी यह सिद्ध नहीं होता कि एएमयू अल्पसंख्यक संस्थान है, फिर भी वहां दलितों को आरक्षण नहीं। आखिर इस स्थिति के लिए कौन जिम्मेदार है? जामिया की स्थापना भी 1920 में अलीगढ़ में हुई थी। 1935 में उसे दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया। वर्ष 1988 में संसद से इसे केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त हुआ। जैसे ही 2011 में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शिक्षा आयोग ने इसे अल्पसंख्यक संस्थान का दर्जा दिया और संप्रग-2 सरकार ने इसका समर्थन किया वैसे ही उसने दलितों-पिछड़ों को आरक्षण देना बंद कर दिया। मामला दिल्ली उच्च न्यायालय में लंबित है।

देश में एक समूह-विशेषकर वामपंथी और मुस्लिम समाज के कुछ संगठन 'दलित-मुस्लिम' गठजोड़ की बात करते हैं। क्या उनकी ओर से इन दोनों विश्वविद्यालयों में दलितों को उनका वैध अधिकार-आरक्षण दिलाने का प्रयास हुआ? आखिर इस स्थिति का क्या कारण है? हिंदू समाज में व्याप्त कुरीतियों और उनके कारण होने वाले अन्याय के विरुद्ध आवाज बीते कई शताब्दियों से मुखर है। संघर्ष रूपी उसी तप से भारत में जहां दलितों-वंचितों को आरक्षण सहित समान संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं वहीं पाकिस्तान और बांग्लादेश में दलितों का आर्थिक, शारीरिक और सामाजिक शोषण- मुस्लिम-दलित गठबंधन के अप्रासंगिक होने का ज्वलंत उदाहरण है।

स्वतंत्रता से पूर्व जिन्ना ने एएमयू को 'पाकिस्तान की आयुधशाला' कहा था। आखिर शत-प्रतिशत केंद्रीय अनुदान से संचालित और संघीय सूची में शामिल संस्थान में दलितों-वंचितों को उनके संवैधानिक अधिकारों से कैसे वंचित किया जा सकता है?

(लेखक राज्यसभा के पूर्व सदस्य एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

आसक्ति से मुक्ति

जिन व्यक्तियों ने मानव चेतना के सच का अनुभव किया है, उनका कहना है कि जब कोई व्यक्ति आसक्ति व अहंता के प्रभाव में आ जाता है या उनसे घिर जाता है तो उसके लिए पाप के अनेकों द्वार खुल जाते हैं। वह चाहे-अनचाहे पाप करने लगता है। यहां तक कि उस स्थिति में वह जो भी करता है वही पाप बन जाता है या ऐसी स्थिति में वह जो भी सोचता है उस पर भी नकारात्मक प्रभाव दृष्टिगत होता है। अर्थात आसक्ति का भाव ही पाप का स्रोत है।

एक संत हुए हैं- पीडी आस्पेन्स्की। वह एक विचारशील व दार्शनिक थे जिनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है। आस्पेन्स्की के शिष्य बेनेट ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब उसने अपने गुरु आस्पेन्स्की से पाप-पुण्य की चर्चा की तो उन्होने कहा, 'अहंकार व आसक्ति के रहने पर पुण्य करना असंभव है और इनके न रहने पर पाप बिल्कुल नहीं होते हैं।' अपने गुरु की इस शिक्षा को बेनेट ने कई बार परखा और पाया कि अहंकार व आसक्ति से मुक्त मनःस्थिति में पाप नहीं हो सकता। तब समझ में आया कि पाप के लिए अहंकार व आसक्ति आवश्यक है और पुण्य के लिए अहंकार व आसक्ति से छुटकारा जरूरी है।

इसके विपरीत जब अहंता व आसक्ति की मूर्छा टूटती है तो व्यक्ति अपने आप चेत जाता है, क्योंकि आसक्ति की मात्रा के अनुसार ही व्यक्ति की मूर्छा गहरी होती है। जिस अनुपात में अहंकार होता है उसी अनुपात में व्यक्ति के बेहोशी का दायरा होता है। इनके टूटते ही चैतन्यता के अनेकों गवाक्ष खुलते हैं। प्रकाश-अनेकों द्वारों से अस्तित्व में प्रवेश करने लगता है। ऐसे में मूर्छा टूट जाती है तथा व्यक्ति का चेतन बढ़ जाता है और पुण्य के अनेकों द्वार खुलते हैं। ऐसी स्थिति में जो कर्म किए जाते हैं वे वास्तव में पुण्य ही हो जाते हैं, क्योंकि इस जागृत अवस्था में पुण्य के अनेक रास्ते बन जाते हैं। इस पाप और पुण्य के बारे में सामान्य व्यक्तियों से लेकर विद्वान तक अनेक चर्चा करते रहते हैं। इस पर वे अनेकों प्रकार के तर्क देते हैं और समीक्षा भी करते रहते हैं। निष्कर्ष कुछ भी हो, परंतु आसक्ति और अहंता ही पाप का स्रोत हैं, इस तथ्य को नहीं झुठलाया जा सकता है। जब यह स्पष्ट है कि आसक्ति हमें सिर्फ भौतिकता और पतन की राह पर ले जाती है तो ऐसी आसक्ति से विरक्ति में ही जीवन का सार छिपा हुआ है।

अवधविहारी शुक्ल

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

लागत मूल्य घटाने का प्रयास क्यों नहीं?

'समर्थन मूल्य से आगे की चुनौती' शीर्षक से लिखे अपने लेख में केसी त्यागी ने लागत मूल्य के ठीक-ठीक निर्धारण पर सारा जोर दिया है। स्वामीनाथन आयोग के फॉर्मूले और सरकार द्वारा की गई गणना के बीच 5-7 प्रतिशत से अधिक का अंतर नहीं है। वास्तव में जोर इस बात पर दिया जाना चाहिए कि लागत मूल्य कैसे घटे? खेती सस्ती कैसे हो और साथ ही उत्पादन में वृद्धि के लक्ष्य किस प्रकार प्राप्त हों। यह बात अच्छी तरह समझ ली जानी चाहिए कि रसायन-आधारित कृषि न सिर्फ महंगी रहेगी, बल्कि उत्पादन वृद्धि में भी असमर्थ होगी। रसायनों ने धरती की सारी जान खींच ली है, उसे विषाक्त बना डाला है, भूगर्भीय जल का अविवेकी व घातक दोहन कर दोहरी समस्या खड़ी की है। उपाय केवल और केवल देसी गाय पर आधारित कृषि ही है। बिहार का नालंदा जिला, कानपुर देहात तथा शामली जिलों के कई हिस्सों में गौ-कृषि के चमत्कारी परिणाम सामने आ चुके हैं। किसानों की आय दोगुनी नहीं, तीन गुनी हो गई है, परंतु हमारे तथाकथित कृषि वैज्ञानिक तथा ढर्रे की खेती के हिमायती नेता पता नहीं किस दुनिया में भटक रहे हैं? इन लोगों को लगभग जीरो बजट की इस फायदेमंद चमत्कारी खेती के बारे में किसानों को जागरूक करना चाहिए। रासायनिक खाद तथा कीटनाशक बनाने वाली शक्तिशाली लॉबी के दबाव को एक झटके से दूर फेंक देना चाहिए। देसी गाय को बचाइए, उसके गोबर-गौमूत्र से खेती कीजिए, साथ में स्वास्थ्यवर्धक एवं रोग-नाशक पंचगव्य पाइए। अजय मित्तल, मेरठ

दुष्कर्म की घटनाएं

दुष्कर्म की घटनाएं थमने का नाम नहीं ले रही हैं। रोज कहीं न कहीं से ऐसी खबरें आ जाती हैं। इसमें दोष केवल आरोपित का ही नहीं, उनका भी है जो यह सब होते देखकर भी चुप रहते हैं। बच्चियों के साथ होने वाली ऐसी घटनाओं को कुछ हद तक जागरूकता से रोका जा सकता है। इसमें माता-पिता व अन्य अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों को गुड टच और बैड टच के बारे में बताएं। इससे बच्चे गलत मंशा को समझ सकेंगे और बच सकते हैं। समस्या यही है कि लोग बच्चों से ऐसी बात करने में संकोच करते हैं, लेकिन जब कोई घटना हो जाती है तक क्या बच्चा उसे नहीं जानता है? इसलिए माता-पिता को पुरानी मानसिकता से निकल कर बच्चों से खुलकर बात करनी चाहिए। गीता, दिल्ली विवि

योगी को टोपी

सूफी संत कबीर दास जी के प्राकटय समारोह में उप्र के मुख्यमंत्री योगी आदित्य नाथ ने टोपी पहने से इनकार किया, लेकिन कहा कि हम इसका सम्मान करते हैं। इसमें दोष टोपी पहनाने वाले का है। यह सर्वविदित है कि योगी आदित्य नाथ की वेशभूषा भगवा वस्त्र है तो उन्हें उसी तरह के वस्त्र सम्मान में देने चाहिए। अगर यह टोपी किसी मौलवी को दी जाती तो उसका सदुपयोग हो जाता। वहीं अगर योगी को भगवा वस्त्र में कुछ दिया जाता तो वह उसका उपयोग कर सकते थे।

आसिफ खान, न्यू जाफराबाद, दिल्ली

सोशल मीडिया पर चुनावी प्रचार

वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव के मद्देनजर सभी पार्टियों ने तैयारियां शुरू कर दी हैं। सोशल मीडिया की प्रचार सामग्रियों में फर्जी सामग्री अधिक होती है। इसके जरिए गलत समाचार लोगों तक न पहुंचे, इसके लिए सरकार ने फेसबुक और वाट्सएप को इस पर रोक लगाने का निर्देश दिया है। फेसबुक और वाट्सएप ने सरकार की चेतावनी के बाद इस पर रोक लगाने के प्रयास भी शुरू किए हैं। लेकिन इसके साथ ही गलत सामग्री डालने वालों के खिलाफ कार्रवाई की भी पुख्ता व्यवस्था भी की जानी चाहिए। महेश कुमार यादव, दिल्ली

एक साथ चुनाव पर मतभेद

लोकसभा और विधान सभा चुनाव एक साथ कराने के मुद्दे पर विधि आयोग के दो दिवसीय विचार -विमर्श में विभिन्न राजनीतिक दलों ने अलग-अलग तर्क दिए। कुछ ने इसे संघीय लोकतंत्र के खिलाफ बताया तो कुछ ने कहा कि इससे मौजूदा राज्य सरकारों का कार्यकाल छोटा हो जाएगा। एक देश एक चुनाव का मामला इसलिए उठा है, क्योंकि बार-बार चुनाव कराने से देश में हर समय चुनाव का माहौल बना रहता है। इससे धन की बर्बादी होती है, जिसका सीधा असर आम जनता की जेब पर पड़ता है। चुनाव में होने वाले खर्च के कारण कई बार महंगाई भी बढ़ जाती है। ऐसे में अगर एक साथ चुनाव होते हैं तो चुनाव में आने वाले खर्च में कमी आएगी और इसके साथ ही आम जनता परेशानियों से बचेगी। सरकारों को पूरे पांच साल काम करने का मौका मिलेगा। नेताओं का ध्यान चुनाव पर नहीं जाएगा। हमेशा चुनावी माहौल रहने की वजह से नेता काम करने के बजाए चुनाव प्रचार में उलझे रहते हैं। उन्हें काम करने का मौका ही नहीं मिलता है। चुनाव के दौरान आचार संहिता लागू होने से भी विकास कार्य प्रभावित होते हैं। क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों की एक साथ चुनाव कराने पर आपत्ति का एक कारण यह हो सकता है कि ऐसे में देश के मुद्दे राज्य के मुद्दे पर हावी हो जाएंगे और यह क्षेत्रीय पार्टियों के लिए ठीक नहीं होगा। लेकिन राजनीतिक दल जिस संघीय लोकतंत्र की बात कर रहे हैं उन्हें यह पता होना चाहिए कि भारत एक संघीय देश नहीं है। यह राज्यों के ए